माननीय जे.वी. गुप्ता और आर.एस. मोंगिया के समक्ष, न्यायमूर्ति

स्नातकोत्तर चिकित्सा शिक्षा एवं अनुसंधान संस्थान, चंडीगढ़ - अपीलकर्ता।

बनाम

जे. सी. मेहता,-प्रतिवादी।

1988 का पत्र पेटेंट अपील संख्या 1150

7 सितंबर 1990.

भारत का संविधान, 1950—अनुच्छेद 311(2)—केंद्रीय सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, 1965—रिस. 14.(23),. 15(4) और 17—पोस्ट ग्रेजुएट इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल एजुकेशन और रिसर्च, चंडीगढ़, विनियम, 1967—रेग्ल। 38(2)-सामान्य सरकारी सेवा (आचरण) नियम, 1964-आरआई। 3(1) (i) और (ii) - 'अनिवार्य सेवानिवृत्ति - सजा लगाने के आदेश के संचार से पहले जांच रिपोर्ट प्रदान करने की आवश्यकता नहीं है - सजा देने से पहले जांच रिपोर्ट की आपूर्ति न करने से प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन नहीं होता है -हालाँकि, मामले को सुनवाई का अवसर देने के बाद नए निर्णय के लिए अपीलीय प्राधिकारी को भेज दिया गया।

यह माना गया कि यदि भारत के संविधान के अनुच्छेद 311(2) में संशोधन करने का विचार दोषी अधिकारी को सजा के खिलाफ कारण बताने के अवसर से वंचित करना था, जिसमें सुप्रीम कोर्ट के अनुसार यह अवसर भी शामिल था। यह दिखाने के लिए कि जांच अधिकारी के निष्कर्ष गलत थे, संशोधन का विचार ही निरर्थक हो जाएगा यदि दोषी अधिकारी को फिर से जांच रिपोर्ट की एक प्रति प्रदान की जाए ताकि वह उसे दिखा सके! अनुशासनात्मक प्राधिकारी को कि जांच अधिकारी के निष्कर्ष गलत थे। यही तर्क सी.सी.ए. के नियम 15(4) पर लागू होगा। नियम।

(पैरा 13)

माना गया कि सी.सी.ए. नियम विशेष रूप से मंच प्रदान करते हैं। जिस पर जांच रिपोर्ट उपलब्ध कराई जानी है। यही स्थिति होने के कारण, हमारा मानना है कि सजा देने के आदेश के संचार से पहले किसी भी समय जांच रिपोर्ट की एक प्रति प्रदान करने की कोई आवश्यकता नहीं है। (पैरा 14)

माना गया कि नियम 15(4) सी.सी.ए. के नियम 17 के साथ पढ़ा जाता है। नियम, विशेष रूप से अनुशासनात्मक प्राधिकारी को यह दिखाने के लिए कि जांच अधिकारी के निष्कर्ष गलत थे, संबंधित अधिकारी को जांच रिपोर्ट की प्रति प्रदान करने के लिए प्राकृतिक न्याय के नियमों के आह्वान को बाहर करते हैं। इसे वह अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष दिखा सकता है. (पैरा 17)

सी.डब्ल्यू.पी. में माननीय श्री न्यायमूर्ति डी. वी. सहगल के दिनांक 8 अगस्त, 1988 के फैसले के विरुद्ध लेटर्स पेटेंट के खंड 10 के तहत अपील। 1987 का क्रमांक 3011.

अपीलकर्ताओं की ओर से एस. नेहरा, वरिष्ठ अधिवक्ता और अरुण नेहरा, अधिवक्ता।

प्रतिवादियों की ओर से एच. एल. सिब्बल, वरिष्ठ अधिवक्ता और आर. एस. राय, अधिवक्ता।

निर्णय

माननीय आर. एस. मोंगिया न्यायमूर्ति

श्री जे.सी. मेहता रिट-याचिकाकर्ता, जो अब वर्तमान अपील में प्रतिवादी हैं, को 12 जनवरी, 1969 को पोस्ट ग्रेजुएट इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल एजुकेशन एंड रिसर्च, चंडीगढ़ (संक्षेप में पी.जी.आई.) में एक कार्यकारी अभियंता के रूप में नियुक्त किया गया था। उन्हें पदोन्नत किया गया था पी.जी.आई. की गवर्निंग बॉडी द्वारा सुपरिंटेंडिंग इंजीनियर के पद पर नियुक्ति। अगस्त, 1972 में। श्री जे.सी. मेहता की सेवा की शर्तें पोस्ट ग्रेजुएट इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल एजुकेशन एंड रिसर्च, चंडीगढ़, विनियम, 1967 द्वारा शासित थीं, जिन्हें 1966 के संसद अधिनियम संख्या 51 की धारा 32 के तहत तैयार किया गया था।

याचिकाकर्ता को निलंबित कर दिया गया था और उसे 5 मई, 1983 और 6 जून, 1988 को दो आरोप-पत्र (रिट याचिका के अनुलग्नक पी-1 और पी-2) दिए गए थे। संक्षेप में, यह उल्लेख किया जा सकता है कि प्रतिवादी के खिलाफ आरोप पत्र, अनुलग्नक पी-1 में आरोपों का सार यह था कि वर्ष 1978-79 के दौरान अधीक्षक अस्पताल अभियंता के रूप में कार्य करते हुए सर्वश्री पी.एल. सोढ़ी, अस्पताल अभियंता, अरुण के साथ मिलीभगत की गई। वोहरा, टेक्नोलॉजिस्ट ग्रेड- II, और कुछ अन्य लोगों ने पी.जी.आई. की लेखा प्रक्रिया की नियमावली में प्रदान की गई कोडल औपचारिकताओं का पालन करने की परवाह नहीं की। और मेसर्स हिंदुस्तान टिम्बर स्टोर्स, नई दिल्ली को 2000 देवदार और 500 कैल-लकड़ी के स्लीपरों के लिए कुल रु. 3,81.876-06 पी. और बाद में उन्होंने सामग्री का निरीक्षण नहीं किया, जिसके परिणामस्वरूप घटिया स्लीपर उनके द्वारा स्वीकार कर लिए गए। उन्होंने कुल लागत का 95 प्रतिशत भुगतान भी जल्दबाजी में कर दिया और रुपये के अवैध ओवरहेड शुल्क का भी भुगतान किया। 13,352-34 पी. और बिक्री कर रु. ओवरहेड शुल्क पर 1,335-20 पी. उन्होंने रुपये का अधिक भुगतान भी किया। 4408.00. जिससे वह

कदाचार किया था और ईमानदारी और कर्तव्य के प्रति समर्पण की कमी प्रदर्शित की थी और केंद्र सरकार सेवा (आचरण) नियम, 1964 के नियम 3(1) (i) और (ii) का उल्लंघन किया था।

यहां बता दें कि कर्मचारियों को पी.जी.आई. उनके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई करने के लिए केंद्रीय सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, 1965 (इसके बाद इसे सी.सी.ए. नियम

कहा जाएगा) लागू होते हैं। आरोप पत्र, अनुलग्नक पी-1 के अनुसरण में, रिट याचिकाकर्ता के खिलाफ सी.सी.ए. के प्रावधानों के अनुसार एक जांच की गई थी। नियम, श्री अशोक कुमार रस्तोगी, विभागीय जांच आयुक्त, केंद्रीय सतर्कता आयोग, जिन्हें जांच अधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया था, ने अपनी विस्तृत रिपोर्ट (लिखित बयान के साथ अनुबंध नियम 1/7) के माध्यम से श्री मेहता को निम्नलिखित आरोपों का दोषी पाया: —

“(ए) यह आरोप साबित हो गया है कि श्री मेहता ने संहिता संबंधी औपचारिकताओं का पालन नहीं किया।

(बी) यह आरोप कि श्री मेहता ने पी.जी.आई. के हितों की रक्षा नहीं की। फर्म को अनुकूल शर्तों की अनुमति देने और उसके भुगतान की व्यवस्था करने से यह सिद्ध होता है।

(सी) यह आरोप कि श्री मेहता ने लकड़ी का निरीक्षण नहीं किया, स्वीकार्य नहीं है क्योंकि उन्हें किसी भी स्तर पर ऐसा करने की आवश्यकता नहीं थी।

(डी) यह आरोप कि आपूर्ति की गई लकड़ी ग्रेड । गुणवत्ता के अनुरूप नहीं थी, पूरी तरह से निराधार पाया गया है।

सी.सी.ए. के अनुसार अनुबंध पी-2 में निहित आरोपों की एक अलग जांच की गई। स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय के संयुक्त सचिव, श्री पी. आर. दास गटिप्टा द्वारा नियम, जिन्हें जांच अधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया था, - लिखित बयान के साथ अपनी रिपोर्ट (अनुलग्नक आर-टी / 6) के माध्यम से) उन्होंने अपने निष्कर्षों को निम्नलिखित के रूप में संक्षेपित किया: -

शुल्क

(ए) क्या यह स्थापित हो गया है

श्री मेहता 11 नवम्बर 1983 से जानबूझकर ड्यूटी से अनुपस्थित थे?

(बी) क्या यह सेंट्रा के बराबर है - नहीं, चूंकि इस नियम में कदाचार के कृत्यों को कवर करने के लिए नियम 3(1) (एन) का उल्लेख किया गया है और (इन) एई सेंट्रल को अन्य विशिष्ट प्रो- <एम सेंडी कंडक्ट द्वारा कवर किया गया है। दर्शन सीएफ नियम। नियम, 1964 ?

(3) पी.जी.आई. की गवर्निंग बॉडी, जो श्री मेहता की नियुक्ति और अनुशासनात्मक प्राधिकारी है, ने दोनों जांच रिपोर्टों और उनमें दर्ज निष्कर्षों और अन्य प्रासंगिक सामग्री पर विचार करने के बाद एक ही तारीख, यानी 15 तारीख को दो अलग-अलग आदेश पारित किए। नवंबर, 1984 (अनुलग्नक पी-3 और पी-3/ए), जिसके द्वारा प्रतिवादी श्री मेहता को सेवा से अनिवार्य सेवानिवृत्ति की सजा दी गई थी। अनिवार्य सेवानिवृत्ति के उपरोक्त दोनों आदेशों के खिलाफ श्री मेहता द्वारा पी.जी.आई. के संस्थान

निकाय के अध्यक्ष, जो केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्री हैं, को अपील दायर की गई थी। हालाँकि, इस अपील को श्री मेहता को भेजे गए मेमो, दिनांक 31 मार्च, 1987 (अनुलग्नक पी-6) के माध्यम से खारिज कर दिया गया था। श्री मेहता ने इस न्यायालय में रिट याचिका के माध्यम से आदेशों को अनुलग्नक पी-3, पी-3/ए और पी-6 को चुनौती दी।

(4) विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष, चार बिंदु उठाए गए थे, जिनका उल्लेख विद्वान एकल न्यायाधीश ने किया है और नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

“(1) जांच अधिकारियों द्वारा आरोपों पर अपनी संबंधित रिपोर्ट प्रस्तुत करने के बाद याचिकाकर्ता सुनवाई के अवसर का हकदार था। सजा की मात्रा पर अवसर देने के बाद ही प्रतिवादी नंबर 1 कानून के अनुसार सजा देने का निर्णय ले सकता है

सी.सी.ए. नियम पी.जी.आई. के कर्मचारियों पर लागू किये गये। 1967 में विनियमों के विनियम 38(2) द्वारा। सी.सी.ए. के नियम 15(4) में भारत सरकार द्वारा किया गया संशोधन। वर्ष 1976 में 42वें संशोधन द्वारा संविधान के अनुच्छेद 311(2) में संशोधन के परिणामस्वरूप नियम वास्तव में पी.जी.आई. के कर्मचारियों पर लागू नहीं होते हैं। क्योंकि इस संशोधन को अधिनियम की धारा 32(1) के तहत नहीं अपनाया गया था।

(3) किसी भी दर पर, यह प्रतिवादी नंबर 2 पर निर्भर था कि वह जांच अधिकारियों (अनुलग्नक आर-एल/6 और आर-एल/7) की रिपोर्टों की प्रतियां प्रदान करे ताकि उसे उन्नत कारणों पर एक प्रतिनिधित्व को संबोधित करने का अवसर उपलब्ध कराया जा सके। उक्त अधिकारियों द्वारा अपने निष्कर्षों पर पहुंचने और उन्हें चुनौती देने के लिए भी। जांच अधिकारी की रिपोर्टों को अपनाए जाने, उनके निष्कर्षों को अनुशासन प्राधिकारी द्वारा स्वीकार किए जाने या उनमें बदलाव किए जाने से पहले यह प्राकृतिक न्याय के नियमों की मांग थी। चूँकि ऐसा नहीं था

किया गया, सज़ा के विवादित आदेश भेदभावपूर्ण और प्राकृतिक न्याय के नियमों का उल्लंघन करने वाले थे।

(4) अपीलीय प्राधिकारी के रूप में संस्थान निकाय ने कोई स्पष्ट आदेश पारित नहीं किया, न ही यह रिकॉर्ड किया कि कैसे, वह संतुष्ट था कि याचिकाकर्ता पर निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार जुर्माना लगाया गया था। नियम, कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी के निष्कर्ष रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य द्वारा समर्थित थे और लगाया गया जुर्माना उचित था। इसके अलावा, अपीलीय प्राधिकारी के लिए यह कारण दर्ज करना आवश्यक था कि वह याचिकाकर्ता द्वारा उसकी अपील में उठाए गए विभिन्न तर्कों को क्यों खारिज कर रहा है।"

(5) विद्वान एकल न्यायाधीश ने ऊपर उल्लिखित पहले और दूसरे बिंदु को अस्वीकार कर दिया, लेकिन बिंदु 3 और 4 को उनके पक्ष में पाया गया, और, तदनुसार, अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश और अपील को खारिज करने के आदेश को रद्द कर दिया गया। विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले से असंतुष्ट पी.जी.आई. ने वर्तमान पत्र पेटेंट अपील दायर की है।

(6) विद्वान एकल न्यायाधीश ने ऊपर उद्धृत बिंदु संख्या 3 पर निर्णय लेते हुए यह माना कि जहां अनुशासनात्मक प्राधिकारी स्वयं जांच प्राधिकारी नहीं है। उसे जांच प्राधिकारी की रिपोर्ट पर अपना दिमाग लगाना होगा और वह जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों से असहमत हो सकता है। विद्वान एकल न्यायाधीश के अनुसार, जांच अधिकारी के निष्कर्ष प्रकृति में अस्थायी हैं और यह जांच प्राधिकारी की रिपोर्ट पर अनुशासनात्मक प्राधिकारी का निर्णय है जो अंततः दोषी अधिकारी के अधिकारों को प्रभावित और प्रभावित करता है। इसलिए, विद्वान एकल न्यायाधीश के अनुसार, यदि जांच प्राधिकारी की रिपोर्ट दोषी अधिकारी को नहीं बताई गई है और उसे जांच प्राधिकारी के निष्कर्षों को स्वीकार करने से पहले अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा अवसर नहीं दिया गया है, तो यह निश्चित रूप से गलत है। प्राकृतिक न्याय के नियमों का उल्लंघन। इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए एकमात्र भरोसा इंस्टीट्यूट ऑफ चार्टर्ड अकाउंटेंट्स ऑफ इंडिया बनाम एल.के. रैना और अन्य (1) मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर रखा गया था।

(7) 'श्रीमान' अपीलकर्ता-पी.जी.आई. के विद्वान वकील, वरिष्ठ अधिवक्ता डी.एस. नेहरा ने प्रस्तुत किया कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने गलती की है

(1) ए.आई.आर. 1987 एस.सी. 71.

रत्ना के मामले (सुप्रा) पर भरोसा करते हुए, क्योंकि वर्तमान मामले में नियम उन प्रावधानों से भिन्न हैं जो रत्ना के मामले (सुप्रा) में विचाराधीन थे। अपीलकर्ता के विद्वान वकील के इस तर्क की सराहना करने के लिए कि जांच अधिकारी के निष्कर्षों को स्वीकार करने से पहले अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा जांच अधिकारी की रिपोर्ट की प्रति की आपूर्ति की कोई आवश्यकता नहीं है, इसे दोबारा प्रस्तुत करना उचित होगा। प्रासंगिक सी.सी.ए. नियम, जिनसे हमारा संबंध है:-

नियम 14(23), अन्य बातों के साथ-साथ निम्नानुसार प्रावधान करता है: -

(1) पहली जांच के समापन के बाद, एक रिपोर्ट तैयार की जाएगी और इसमें शामिल होगा-

(ए) आरोप के लेख और कदाचार या दुर्व्यवहार के आरोपों का बयान;

(बी) आरोप के प्रत्येक लेख के संबंध में सरकारी कर्मचारी का बचाव;

(सी) आरोप के प्रत्येक लेख के संबंध में साक्ष्य का मूल्यांकन;

(डी) यदि आरोप के प्रत्येक लेख पर निष्कर्ष और उसके कारण।

स्पष्टीकरण.-यदि जांच प्राधिकारी की राय में जांच की कार्यवाही आरोप के मूल लेखों से भिन्न किसी आरोप के लेख को स्थापित करती है, तो वह ऐसे आरोप के लेख पर अपने निष्कर्ष दर्ज कर सकता है।

(8) प्रावधान है कि आरोप 11 के ऐसे अनुच्छेद 31 के निष्कर्षों को तब तक दर्ज नहीं किया जाएगा जब तक कि सरकारी कर्मचारी ने या तो उन तथ्यों को स्वीकार नहीं किया है जिन पर आरोप का ऐसा लेख आधारित है या उसके पास ऐसे आरोप के अनुच्छेद के खिलाफ खुद का बचाव करने का उचित अवसर नहीं है।

(11) जांच प्राधिकारी, जहां वह स्वयं अनुशासनात्मक प्राधिकारी नहीं है, अनुशासनात्मक प्राधिकारी को जांच के रिकॉर्ड अग्रेषित करेगा जिसमें शामिल होंगे-

(ए) खंड (i) के तहत इसके द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट;

(बी) सरकारी कर्मचारी द्वारा प्रस्तुत बचाव का लिखित बयान, यदि कोई हो;

(सी) जांच के दौरान पेश किए गए मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य;

(डी) जांच के दौरान प्रस्तुतकर्ता अधिकारी या सरकारी कर्मचारी या दोनों द्वारा दायर लिखित विवरण, यदि कोई हो; और

(ई) जांच के संबंध में अनुशासनात्मक प्राधिकारी और जांच प्राधिकारी द्वारा दिए गए आदेश, यदि कोई हों।

नियम 15 निम्नलिखित शर्तों में है:-

"जांच रिपोर्ट पर कार्रवाई। - (1) अनुशासनात्मक प्राधिकारी, यदि वह स्वयं जांच प्राधिकारी नहीं है, तो उसके द्वारा लिखित रूप में दर्ज किए जाने वाले कारणों से मामले को आगे की जांच रिपोर्ट और पूछताछ के लिए जांच प्राधिकारी को भेज सकता है। इसके बाद प्राधिकारी, जहां तक संभव हो, नियम 14 के प्रावधानों के अनुसार आगे की जांच करने के लिए आगे बढ़ेगा;

(2) अनुशासनात्मक प्राधिकारी, यदि वह आरोप के किसी भी लेख पर जांच प्राधिकारी के निष्कर्षों से असहमत है, तो ऐसी असहमति के लिए अपने कारणों को रिकॉर्ड करेगा और ऐसे आरोप पर अपने स्वयं के निष्कर्षों को रिकॉर्ड करेगा यदि रिकॉर्ड पर साक्ष्य इस उद्देश्य के लिए पर्याप्त है।

(3) यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी, आरोप के सभी या किसी भी लेख पर अपने निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए यह राय रखता है कि नियम 11 के खंड (i) से (iv) में निर्दिष्ट कोई भी दंड सरकारी

कर्मचारी पर लगाया जाना चाहिए , यह, नियम 16 में किसी बात के होते हुए भी, ऐसा जुर्माना लगाने का आदेश देगा:

बशर्ते कि प्रत्येक मामले में जहां आयोग से परामर्श करना आवश्यक हो, जांच का रिकॉर्ड अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा आयोग को उसकी सलाह के लिए भेजा जाएगा और उस पर कोई जुर्माना लगाने का आदेश देने से पहले ऐसी सलाह पर विचार किया जाएगा। सरकारी नौकर।

(4) यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी आरोप के सभी या किसी लेख पर अपने निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए और के आधार पर

जांच के दौरान प्रस्तुत साक्ष्यों का मानना है कि नियम 11 के खंड (v) से (ix) में निर्दिष्ट कोई भी दंड सरकारी कर्मचारी पर लगाया जाना चाहिए, यह सरकारी कर्मचारी पर लगाया जाएगा, यह एक आदेश देगा ऐसा जुर्माना लगाना और सरकारी कर्मचारी को लगाए जाने वाले प्रस्तावित जुर्माने पर प्रतिनिधित्व करने का कोई अवसर देना आवश्यक नहीं होगा:

बशर्ते कि प्रत्येक मामले में जहां आयोग से परामर्श करना आवश्यक हो, जांच का रिकॉर्ड अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा आयोग को उसकी सलाह के लिए भेजा जाएगा और ऐसा कोई भी जुर्माना लगाने का आदेश देने से पहले ऐसी सलाह पर विचार किया जाएगा। सरकारी कर्मचारी पर।"

नियम 17 निम्नलिखित शर्तों में है:-

"17. अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा दिए गए आदेशों को सरकारी कर्मचारी को सूचित किया जाएगा, जिसे अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा आयोजित जांच की रिपोर्ट की एक प्रति, यदि कोई हो, और आरोप के प्रत्येक लेख पर उसके निष्कर्षों की एक प्रति भी प्रदान की जाएगी, या जहां अनुशासनात्मक प्राधिकारी जांच प्राधिकारी नहीं है, जांच प्राधिकारी की रिपोर्ट की एक प्रति और अनुशासनात्मक प्राधिकारी के निष्कर्षों का एक विवरण, साथ में उसकी असहमति के संक्षिप्त कारण, यदि कोई हो, जांच प्राधिकारी के निष्कर्षों के साथ, जब तक कि वे पहले से ही न हों उन्हें आयुक्त द्वारा दी गई सलाह की एक प्रति, यदि कोई हो, प्रदान की गई है, और जहां अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने आयोग की सलाह को स्वीकार नहीं किया है, ऐसी अस्वीकृति के कारणों का एक संक्षिप्त विवरण।

(9) श्री डी.एस. नेहरा, वरिष्ठ अधिवक्ता, अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने तर्क दिया कि नियम 14(23)(i) को पढ़ने से पता चलता है कि जांच रिपोर्ट में लेख <आरोप और बचाव के अलावा अन्य बातें भी शामिल होनी चाहिए सरकारी कर्मचारी का, आरोप के प्रत्येक अनुच्छेद के संबंध में साक्ष्य का मूल्यांकन और साथ ही आरोप के प्रत्येक अनुच्छेद पर निष्कर्ष और उसके कारण। विद्वान वकील के अनुसार, जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए ये निष्कर्ष अच्छे निष्कर्ष हैं और अनुशासनात्मक

प्राधिकारी को हालांकि जांच अधिकारी के निष्कर्षों से अलग होने का अधिकार है, लेकिन उसे ऐसी असहमति के कारणों को दर्ज करना होगा जैसा कि नियम के तहत आवश्यक है।

एम

सी.सी.ए. की धारा 15(2) नियम। नियम 14 द्वारा परिकल्पित विस्तृत प्रक्रिया के तहत, अपराधी अधिकारी को अपना बचाव करने का पूरा अवसर दिया जाता है और साक्ष्य समाप्त होने के बाद, अपराधी अधिकारी को साक्ष्य के आधार पर मामले पर बहस करने और यहां तक कि लिखित संक्षिप्त जानकारी देने का अवसर दिया जाता है। विद्वान वकील के अनुसार, किसी भी कानून या प्राकृतिक न्याय के नियमों के तहत ऐसी कोई आवश्यकता नहीं है कि जब अनुशासनात्मक प्राधिकारी जांच अधिकारी के निष्कर्षों को स्वीकार कर रहा हो, तो उसे जांच अधिकारी की रिपोर्ट की एक प्रति दोषी अधिकारी को देनी होगी। , ताकि वह इसके विरुद्ध पश्चाताप कर सके कि निष्कर्षों को स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए।

(10) इससे पहले कि हम विद्वान वकील की दलीलों का विश्लेषण करें, यहां यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 311 का उप खंड (2), जिसमें संशोधन से पहले प्रस्तावित सजा के संबंध में कारण बताओ नोटिस देने की परिकल्पना की गई है, - 3 जनवरी, 1977 को 42वें संशोधन अधिनियम, 1976 के तहत निम्नानुसार पढ़ा गया: -

"अनुच्छेद 311(2) - उपरोक्त किसी भी व्यक्ति को उस जांच के अलावा बर्खास्त या हटाया या रैंक में कम नहीं किया जाएगा, जिसमें उसे उसके खिलाफ आरोपों के बारे में सूचित किया गया हो और उसके संबंध में सुनवाई का उचित अवसर दिया गया हो वे आरोप और जहां ऐसी जांच के बाद उस पर ऐसा कोई जुर्माना लगाने का प्रस्ताव है, जब तक कि उसे प्रस्तावित दंड पर प्रतिनिधित्व करने का उचित अवसर नहीं दिया जाता है, लेकिन केवल ऐसी जांच के दौरान पेश किए गए सबूतों के आधार पर।

(11) 42वें संशोधन द्वारा, शब्द “और. जहां ऐसी जांच के दौरान यह प्रस्तावित है" को हटा दिया गया और निम्नलिखित को प्रतिस्थापित कर दिया गया: -

“बशर्ते कि जहां ऐसी जांच के बाद उस पर ऐसा कोई जुर्माना लगाने का प्रस्ताव हो, ऐसा जुर्माना ऐसी जांच के दौरान पेश किए गए साक्ष्य के आधार पर लगाया जा सकता है और ऐसे व्यक्ति को प्रतिनिधित्व करने का कोई 6 अवसर देना आवश्यक नहीं होगा। प्रस्तावित दंड पर।”

सी.सी.ए. के नियम 15(4) में संशोधन से पहले 2 सितंबर 1978 के नियम में संविधान के असंशोधित अनुच्छेद 311 जैसा ही प्रावधान था, जिसके तहत यह देना जरूरी था.

प्रस्तावित सज़ा के विरुद्ध कारण बताओ नोटिस। सी.सी.ए. का असंशोधित नियम 15(4) नियम नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

15(4) (i) यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने आरोप के सभी या किसी लेख पर अपने निष्कर्षों को पढ़ा है, तो उसकी राय है कि नियम 11 के खंड (v) से (ix) में निर्दिष्ट कोई भी दंड होना चाहिए सरकारी कर्मचारी पर लगाया गया, यह-

(ए) सरकारी कर्मचारी को उसके द्वारा की गई जांच की रिपोर्ट और आरोप के प्रत्येक लेख पर उसके निष्कर्षों की एक प्रति प्रदान करेगा, या, जहां जांच उसके द्वारा नियुक्त जांच प्राधिकारी द्वारा की गई है, रिपोर्ट की एक प्रति ऐसे प्राधिकारी का और आरोप के प्रत्येक लेख पर उसके निष्कर्षों का एक विवरण, साथ ही जांच प्राधिकारी के निष्कर्षों के साथ उसकी असहमति के संक्षिप्त कारण, यदि कोई हो;

(बी) सरकारी कर्मचारी को उस पर लगाए जाने वाले प्रस्तावित दंड को बताते हुए एक नोटिस दें और उसे बुलाएं और नोटिस प्राप्त होने के पंद्रह दिनों के भीतर या पंद्रह दिनों से अधिक का अतिरिक्त समय, जो अनुमति दी जाए, प्रस्तुत करने के लिए कहें। , ऐसा अभ्यावेदन जिसकी उसे अनुमति दी जा सकती है, ऐसा अभ्यावेदन जो वह नियम 14 के तहत आयोजित जांच के दौरान पेश किए गए साक्ष्य के आधार पर प्रस्तावित दंड पर देना चाहता है।

हालाँकि, 2 सितंबर 1978 से नियम 15(4) में संशोधन किया गया था, जिसे इस निर्णय के पहले भाग में पहले ही उद्धृत किया जा चुका है। सी.सी.ए. के नियम 15(4) में संशोधन करके। नियमों में यह प्रावधान किया गया था कि सरकारी कर्मचारी को लगाए जाने वाले प्रस्तावित जुर्माने पर अभ्यावेदन का अवसर देना आवश्यक नहीं होगा।

(12) भारतीय संविधान के अनुच्छेद 311 में जुर्माना लगाने से पहले दूसरे कारण बताओ नोटिस का प्रावधान किया गया था, जो भारत बनाम एच.सी. गोयल (2) में शीर्ष न्यायालय द्वारा विचार के लिए आया था, जिसमें उनके आधिपत्य ने माना था कि दोषी अधिकारी प्रस्तावित जुर्माने के खिलाफ कारण बताओ नोटिस का जवाब देते समय यह भी दिखा सकता है कि जांच के निष्कर्ष

(2) ए.आई.आर. 1964 एस.सी. 364.

जांच रिपोर्ट में अधिकारी गलत थे। दूसरे शब्दों में, दोषी अधिकारी न केवल यह दिखा सकता है कि प्रस्तावित सज़ा अत्यधिक थी या इसकी बिल्कुल भी आवश्यकता नहीं थी, बल्कि गुण-दोष के आधार पर जांच रिपोर्ट पर हमला भी कर सकता था। रिपोर्ट के पैरा 11 में, यह निम्नानुसार देखा गया है: -

<<

इस प्रकार यह देखा जाएगा कि दूसरे नोटिस का उद्देश्य लोक सेवक को दोनों मामलों में सरकार को संतुष्ट करने में सक्षम बनाना है, एक यह कि वह अपने खिलाफ लगाए गए आरोपों से निर्दोष है और

दूसरा यह कि भले ही उसके खिलाफ आरोप साबित हो जाएं। उसे, उसे दी जाने वाली प्रस्तावित सजा अनावश्यक रूप से गंभीर है।"

(13) अब अपीलकर्ता के वकील श्री नेहरा की दलीलों पर वापस आते हैं। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि सी.सी.ए. के असंशोधित नियम 15(4) के प्रावधान नियम संविधान के असंशोधित अनुच्छेद 311(2) और सी.सी.ए. के नियम 15(4) के संशोधित प्रावधान के समान थे। नियम संविधान के संशोधित अनुच्छेद 311(2) के समान हैं। विद्वान वकील के अनुसार, एक बार अनुच्छेद 311(2) में यह कहने के लिए संशोधन किया गया था कि किसी भी कारण बताओ नोटिस देने की कोई आवश्यकता नहीं होगी, दोषी अधिकारी के दोनों अधिकार जो एच. सी. गोयल के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा समाप्त कर दिए गए थे (सुप्रा)) छीन लिये गये। दूसरे शब्दों में, विद्वान वकील के अनुसार, संविधान के अनुच्छेद 311 में संशोधन के बाद, दोषी अधिकारी को अनुशासनात्मक प्राधिकारी को यह दिखाने का कोई अधिकार नहीं है कि जांच अधिकारी द्वारा योग्यता के आधार पर दिए गए निष्कर्ष गलत थे या सजा भी बहुत अधिक थी। गंभीर। विद्वान वकील ने कहा कि यही बात संशोधित नियम 15(4) पर भी समान बल के साथ लागू होनी चाहिए। एक बार इसे सी.सी.ए. के नियम 15(4) में विशेष रूप से प्रदान किया गया है। नियम यह है कि सरकारी कर्मचारी को लगाए जाने वाले प्रस्तावित दंड पर प्रतिनिधित्व करने का कोई अवसर देना आवश्यक नहीं होगा, इसे एच.सी. गोव्स मामले (सुप्रा) में तर्क की समानता पर लिया जाना चाहिए कि किसी अवसर की आवश्यकता नहीं थी दोषी अधिकारी को यह दिखाने के लिए दिया जाना चाहिए कि जांच रिपोर्ट गुण-दोष के आधार पर गलत थी। यदि ऐसे अवसर की परिकल्पना नहीं की गई थी, तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी को यह दिखाने के लिए दोषी अधिकारी को जांच रिपोर्ट की प्रति प्रदान करने का सवाल ही नहीं उठता कि जांच अधिकारी के निष्कर्ष गलत थे। हम इन प्रस्तुतियों में योग्यता पाते हैं। यदि भारत के संविधान के अनुच्छेद 311(2) में संशोधन करने का विचार दोषी अधिकारी को सजा के खिलाफ कारण बताने के अवसर से वंचित करना था, जो कि, के अनुसार

सुप्रीम कोर्ट ने यह दिखाने का अवसर भी शामिल किया कि जांच अधिकारी के निष्कर्ष गलत थे, संशोधन का विचार ही निरर्थक हो जाएगा यदि दोषी अधिकारी को फिर से जांच रिपोर्ट की एक प्रति प्रदान की जाए ताकि उसे सक्षम बनाया जा सके। अनुशासनात्मक प्राधिकारी को यह दिखाने के लिए कि जांच अधिकारी के निष्कर्ष गलत थे। यही तर्क सी.सी.ए. के नियम 15(4) पर भी लागू होगा.

14) सी.सी.ए. का नियम 17. नियम यह भी संकेत देते हैं कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी को यह दिखाने के लिए कि जांच अधिकारी के निष्कर्ष सही नहीं हैं, दोषी अधिकारी को जांच रिपोर्ट की प्रति देना आवश्यक नहीं है क्योंकि उक्त नियम यह प्रावधान करता है कि जब दंड का आदेश दिया जाता है दोषी अधिकारी को सूचित किया जाता है, जांच रिपोर्ट उस आदेश के साथ प्रदान की जाएगी। यदि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा रखा गया प्रस्ताव सही था कि अपराधी अधिकारी को

अनुशासनात्मक जांचकर्ता को यह दिखाने के लिए जांच रिपोर्ट की प्रति प्रदान की जानी थी कि जांच अधिकारी के निष्कर्ष टिकाऊ नहीं थे, तो नियम 17, जो प्रदान करता है क्योंकि जांच रिपोर्ट की प्रति के साथ ओटेड अलोग का संचार निरर्थक हो जाएगा।

सी.सी.ए. नियम विशेष रूप से वह चरण प्रदान करते हैं जिस पर जांच रिपोर्ट प्रदान की जानी है। यही स्थिति होने के कारण, हमारा मानना है कि सजा देने के आदेश के संचार से पहले किसी भी समय जांच रिपोर्ट की एक प्रति प्रदान करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

(15) उपरोक्त दृष्टिकोण के लिए, हमें अरिहरा प्रदेश उच्च न्यायालय के एक फैसले से समर्थन मिलता है, जहां नियम 17 जैसे समान तर्क और घ्निलाब नियम विचाराधीन थे। आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने के.पी. टी.जे.पेन्द्र बनाम मुख्य महाप्रबंधक, (3) में इस प्रकार निर्णय दिया: -

“ऐसा आदेश दिए जाने के बाद; नियमों के नियम 50(5) के तहत इस प्रकार दिए गए आदेशों को जांच अधिकारी की रिपोर्ट की एक प्रति के साथ संबंधित कर्मचारी को सूचित किया जाएगा। नियमों में यह निहित है कि नियमों के नियम 49 के तहत दिए गए किसी भी दंड को लगाने से पहले रिपोर्ट की एक प्रति प्रदान करने की आवश्यकता को समाप्त कर दिया गया है। इसमें कोई संदेह नहीं है यह सच है कि यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी स्वयं जांच अधिकारी नहीं है तो याचिकाकर्ता को जांच अधिकारी की रिपोर्ट उपलब्ध कराने का अधिकार है। लेकिन रिपोर्ट किस स्तर पर प्रदान की जाएगी यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। इसकी व्याख्या करते समय, इस न्यायालय को इसके तहत बताई गई योजना के अनुरूप नियमों पर विचार करना होगा, नियमों का नियम 50 उचित अवसर देते हुए जांच आयोजित करने की प्रक्रिया प्रदान करता है। यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी जांच अधिकारी नियुक्त करता है और जांच के बाद जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट पर, अनुशासनात्मक प्राधिकारी रिकॉर्ड पर पूरी सामग्री पर विचार करेगा और फिर नियम 49 के तहत विनियमित कदाचार के संदर्भ में उचित जुर्माना लगाते हुए उचित आदेश पारित करेगा। नियम। यदि यह एक बड़ा जुर्माना है, तो रिपोर्ट की एक प्रति संबंधित कर्मचारी को नियमों के नियम 50(5) के तहत आदेश के साथ भी प्रदान की जाएगी। नियम के निर्माण की प्रक्रिया में, न्यायालय पुनर्निर्माण नहीं कर सकता है और यह मान सकता है कि नियम स्पष्ट होने पर सजा देने से पहले जांच अधिकारी की रिपोर्ट की एक प्रति प्रदान करने का दायित्व है। यह एक अच्छी तरह से स्थापित कानूनी स्थिति है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत पूरक होंगे लेकिन कानून का स्थान नहीं लेंगे। जब नियम क्षेत्र को कवर करते हैं, तो उस सीमा तक प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के नियमों को बाहर रखा जाता है और केवल नियमों को ही देखा जाता है। यदि 1 नियम मौन हैं, तो यह भी समान रूप से अच्छी तरह से स्थापित है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का सिद्धांत अंतर्निहित है और राज्य या सार्वजनिक उपक्रम के कर्मचारियों पर कोई जुर्माना लगाने से पहले इसे लागू किया जाना चाहिए। नियमों का नियम 50(5) उस क्षेत्र को कवर करता है। जिससे स्वाभाविक न्याय के सिद्धांत निहितार्थ से बाहर हो जाते हैं और

नियमों का नियम 50(5) अकेले उस क्षेत्र को संचालित करता है। चूँकि यह जुर्माना लगाने के बाद ही रिपोर्ट की एक प्रति की आपूर्ति को दर्शाता है, आवश्यक निहितार्थ के अनुसार जुर्माना लगाने से पहले रिपोर्ट की आपूर्ति को बाहर रखा गया है। माना जाता है कि रिपोर्ट अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा याचिकाकर्ता को सेवा से हटाने के आदेश के साथ प्रदान की गई थी। इस प्रकार यह नियमों के नियम 50(5) का उल्लंघन नहीं है, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री एम.आर.के. चौधरी ने अपने निर्णय पर भरोसा जताया"

सुप्रीम कोर्ट के आधिपत्य की रिपोर्ट भारत संघ बनाम ई. बश्यान, (4) में दी गई थी, जिसमें दो न्यायाधीशों की एक डिवीजन बेंच ने एक बड़ी बेंच का जिक्र करते हुए यह मुद्दा उठाया था कि क्या जुर्माना लगाने से पहले रिपोर्ट की एक प्रति प्रस्तुत की जानी चाहिए। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का एक हिस्सा है, राय दी गई कि रिपोर्ट की एक प्रति की आपूर्ति न करना प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन होगा, इसके विपरीत कैलाश चंदर बनाम यूपी राज्य में एक अन्य डिवीजन बेंच द्वारा विपरीत दृष्टिकोण अपनाया गया था। (5). बाद के दृष्टिकोण के प्रकाश में, मुझे यह मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि जुर्माना लगाने से पहले जांच अधिकारी की रिपोर्ट की एक प्रति की आपूर्ति न करने के कारण प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करके विवादित आदेश ख़राब नहीं हुआ है।

16) अपीलकर्ता के लिए दी गई सलाह में आगे प्रस्तुत प्राकृतिक न्याय के नियमों को विशेष रूप से बाहर रखा जा सकता है या कुछ अन्य नियमों को पढ़कर इन्हें आवश्यक इरादे से बाहर रखा गया माना जा सकता है। उन्होंने आगे कहा कि ऐसे मामले में जहां सजा के आदेश के खिलाफ अपील की जाती है, दोषी अधिकारी सुधार योग्य नहीं है और अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष सभी मुद्दे उठा सकता है। इन दोनों तर्कों के लिए, विद्वान वकील ने हमारा ध्यान भारत संघ में सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ के फैसले के पैराग्राफ 101 और 102 और एक अन्य बनाम तुलसीराम पटेल, (6) की ओर आकर्षित किया, जिन्हें नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"101. इसलिए, न केवल प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को संशोधित किया जा सकता है, बल्कि असाधारण मामलों में उन्हें बाहर भी किया जा सकता है। निमो ज्यूडेक्स इन कॉसा सुआ नियम के साथ-साथ ऑडी अल्टरम पार्टम नियम के भी अच्छी तरह से परिभाषित अपवाद हैं। कॉसा सुआ नियम में निमो ज्यूडेक्स आवश्यकता के सिद्धांत के अधीन है और इस पर निर्भर करता है जैसा कि जे. मोहनपात्रा एंड कंपनी बनाम उड़ीसा राज्य (1985) 1 एस.सी.आर. मामले में इस न्यायालय द्वारा बताया गया है। 322, 344-5; (ए.आई.आर. 1984 एस.सी. 1572, 1576-7) जहां तक ऑडी अल्टरम पार्टम नियम का संबंध है, इंग्लैंड और भारत दोनों में, यह अच्छी तरह से स्थापित है कि जहां पूर्व सूचना और अवसर का अधिकार है किसी आदेश को पारित करने से पहले सुना जाना त्वरित कार्रवाई करने

में बाधा उत्पन्न करेगा, ऐसे अधिकार को बाहर रखा जा सकता है। जहां प्रकृति है वहां इस अधिकार को भी बाहर रखा जा सकता है

(4) ए.आई.आर. 1988 एस.सी. 1000।

(5) ए.आई.आर. 1988 एस.सी. 138.

(6) ए.आई.आर. 1985 एस.सी. 1416।

की जाने वाली कार्रवाई, उसके उद्देश्य और उद्देश्य और प्रासंगिक वैधानिक प्रावधानों की योजना इसके बहिष्कार की गारंटी देती है; न ही ऑडी अल्टरम, पार्टम नियम को लागू किया जा सकता है यदि इसे आयात करने से प्रशासनिक प्रक्रिया को पंगु बनाने का प्रभाव पड़ेगा या जहां तत्परता की आवश्यकता है या कार्रवाई करने की तात्कालिकता की मांग है, जैसा कि पेज पर मेनका गांधी के मामले में बताया गया है 681 (1978 का) 2 एससीआर 621. एआईआर 1978 एससी 597 पृष्ठ 629 पर। यदि कानून और किसी स्थिति की आवश्यकताएं ऑडी अल्टरम पार्टम नियम सहित प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को बाहर कर सकती हैं, तो संविधान का एक मजबूत प्रावधान भी ऐसा कर सकता है। , क्योंकि एक संवैधानिक प्रावधान की वैधानिक प्रावधान की तुलना में कहीं अधिक अधिक और सर्वव्यापी पवित्रता होती है। वर्तमान मामले में, अनुच्छेद 311 के खंड (2) को स्पष्ट रूप से दूसरे प्रावधान के शुरुआती शब्दों और विशेष रूप से इसके कीवर्ड "यह खंड लागू नहीं होगा" से बाहर रखा गया है। जैसा कि ऊपर बताया गया है, अनुच्छेद 311 का खंड (2) स्पष्ट शब्दों में ऑडी अल्टरम पार्टम नियम का प्रतीक है। प्राकृतिक न्याय के इस सिद्धांत को एक संवैधानिक प्रावधान, अर्थात् अनुच्छेद 311 के खंड (2) के दूसरे प्रावधान द्वारा स्पष्ट रूप से बाहर रखा गया है; एक बार फिर से वही जांच प्रदान करने के लिए इसे साइड-डोर से दोबारा शुरू करने की कोई गुंजाइश नहीं है, जिसे संवैधानिक प्रावधान ने स्पष्ट रूप से प्रतिबंधित कर दिया है। जहां दूसरे प्रावधान का एक खंड किसी बाहरी आधार पर या ऐसे आधार पर लागू किया जाता है जिसका उस खंड में परिकल्पित स्थिति से कोई संबंध नहीं है, तो इसे लागू करने की कार्रवाई दुर्भावनापूर्ण होगी, और इसलिए, शून्य होगी। ऐसे मामले में अमान्य करने वाले कारक को अनुच्छेद 14 के संदर्भ में संदर्भित किया जा सकता है। हालाँकि, यह एकमात्र दायरा है जो अनुच्छेद 14 में दूसरे प्रावधान के संबंध में हो सकता है, लेकिन यह माना जा सकता है कि एक बार दूसरा प्रावधान ठीक से लागू हो जाए और खंड (2) अनुच्छेद 311 को छोड़कर, अनुच्छेद 14 खंड (2) की जगह लेने के लिए कदम उठाएगा, जो दूसरे प्रावधान के शुरुआती शब्दों के प्रभाव को खत्म कर देगा और इस प्रकार संविधान के निर्माताओं के इरादे को विफल कर देगा। दूसरा प्रावधान सार्वजनिक नीति पर आधारित है और सार्वजनिक हित में है और जनता की भलाई के लिए है और संविधान-निर्माता जिन्होंने इसे अनुच्छेद 311 (2) में शामिल किया है, वे यह निर्णय लेने के लिए सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति थे कि क्या ऐसा बहिष्करण प्रावधान होना चाहिए और किस स्थिति में यह प्रावधान लागू होना चाहिए.

(102) इस संबंध में, यह याद रखना चाहिए कि एक सरकारी कर्मचारी पूरी तरह से बिना किसी अवसर के नहीं होता है। अनुच्छेद 309 के प्रावधानों के तहत या उस अनुच्छेद के संदर्भ में अधिनियमों के तहत बनाए गए नियम आम तौर पर उन मामलों को छोड़कर अपील का अधिकार प्रदान करते हैं जहां बर्खास्तगी, पद से हटाने या पद में कमी का आदेश राष्ट्रपति या राज्य के राज्यपाल द्वारा पारित किया जाता है क्योंकि वे सर्वोच्च संवैधानिक पदाधिकारी, ऐसा कोई उच्च प्राधिकारी नहीं हो सकता जिसके पास उनमें से किसी एक द्वारा पारित आदेश के खिलाफ अपील की जा सके। इस प्रकार, जहां दूसरा प्रावधान लागू होता है, हालांकि एक सरकारी कर्मचारी को अपने खिलाफ लगाए गए आरोपों के खिलाफ खुद का बचाव करने का कोई पूर्व अवसर नहीं है, उसके पास दायर अपील में यह दिखाने का अवसर है कि उसके खिलाफ लगाए गए आरोप सही नहीं हैं। यह प्राकृतिक न्याय की आवश्यकताओं का पर्याप्त अनुपालन होगा। मेनका गांधी के मामले में और लिबर्टी ऑयल मिल्स बनाम भारत संघ में, कार्रवाई के बाद प्रतिनिधित्व करने का अधिकार एक पर्याप्त उपाय माना गया था, और अपील करने के अधिकार की तुलना में अपील एक बहुत व्यापक और अधिक प्रभावी उपाय है। एक प्रतिनिधित्व।"

(17) उपर्युक्त कथन का पालन करते हुए, हमारा विचार है कि नियम 15(4) सी.सी.ए. के नियम 17 के साथ पढ़ा जाए। नियम, विशेष रूप से अनुशासनात्मक प्राधिकारी को यह दिखाने के लिए कि जांच अधिकारी के निष्कर्ष गलत थे, संबंधित अधिकारी को जांच रिपोर्ट की प्रति प्रदान करने के लिए प्राकृतिक न्याय के नियमों के आह्वान को बाहर करते हैं। इसे वह अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष दिखा सकता है.

(18) श्री एच.एल. सिब्बल, वरिष्ठ अधिवक्ता, प्रतिवादी श्री जे.सी. मेहता के विद्वान वकील ने दृढ़तापूर्वक तर्क दिया कि वर्तमान मामला पूरी तरह से रत्ना के मामले (सुप्रा) में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले और विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा कवर किया गया था। रत्ना के मामले (सुप्रा) पर भरोसा करते हुए, सजा के आदेश, अनुलग्नक पी-3 और पी-3/ए को सही ढंग से रद्द कर दिया था। उन्होंने आगे कहा कि सुप्रीम कोर्ट ने भारत संघ और अन्य बनाम ई, बश्याना (7) ए.आई.आर. 1988 सुप्रीम कोर्ट 1000 ने टिप्पणियाँ की थीं, जो उनके तर्कों का समर्थन करती हैं कि अपराधी अधिकारी को अनुशासनात्मक प्राधिकारी को यह दिखाने के लिए जांच रिपोर्ट की एक प्रति प्रदान करने का अधिकार है कि जांच अधिकारी के निष्कर्ष सही नहीं हैं। हमारे पास है

(7) ए.आई.आर. 1988, एस.सी. 1000।

प्रतिवादी के विद्वान वकील के तर्क पर सावधानीपूर्वक विचार किया और रत्ना के मामले (सुप्रा) में निर्णय का अध्ययन किया। रत्ना के मामले (सुप्रा) में, प्रावधान सी.सी.ए. से भिन्न थे। नियम।

चार्टर्ड अकाउंटेंट अधिनियम, 1949 की धारा 21, (प्रासंगिक उद्धरण) जो रत्ना के मामले (सुप्रा) में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचाराधीन थी, नीचे उद्धृत की गई है: -

"संस्थान के सदस्यों के कदाचार से संबंधित पूछताछ में धारा 21 प्रक्रिया: -

"(1) जहां सूचना प्राप्त होने पर, या उसके पास की गई शिकायत पर, परिषद को प्रथम दृष्टया यह राय मिलती है कि संस्थान का कोई भी सदस्य किसी पेशेवर या अन्य कदाचार का दोषी है^ परिषद मामले को संदर्भित करेगी अनुशासन समिति, और अनुशासन समिति उसके बाद ऐसी जांच करेगी। ऐसे तरीके से जो निर्धारित किया जा सकता है, और अपनी जांच के परिणाम की रिपोर्ट परिषद को देगा।

(2) यदि ऐसी रिपोर्ट प्राप्त होने पर परिषद को पता चलता है कि संस्थान का सदस्य किसी पेशेवर या अन्य कदाचार का दोषी नहीं है, तो वह तदनुसार अपने निष्कर्ष दर्ज करेगी और निर्देश देगी कि कार्यवाही दायर की जाएगी या शिकायत को खारिज कर दिया जाएगा। , के रूप में मामला हो सकता है।

(3) यदि ऐसी रिपोर्ट प्राप्त होने पर परिषद को पता चलता है कि संस्थान का सदस्य किसी पेशेवर या अन्य कदाचार का दोषी है, तो वह तदनुसार निष्कर्ष दर्ज करेगी और आगामी उपधाराओं में निर्धारित तरीके से आगे बढ़ेगी।

(4) जहां यह निष्कर्ष निकलता है कि संस्थान का कोई सदस्य पहली अनुसूची में निर्दिष्ट पेशेवर कदाचार का दोषी है, परिषद उस मामले पर उसके खिलाफ आदेश पारित करने से पहले सदस्य को सुनवाई का अवसर देगी, और कर सकती है। इसके बाद निम्नलिखित में से कोई एक आदेश दें, अर्थात्: -

ए) सदस्य को डांटना;

(बी) सदस्य का नाम रजिस्टर से ऐसी अवधि के लिए हटा सकता है, जो पांच वर्ष से अधिक न हो, जितनी परिषद उचित समझे:

बशर्ते कि जहां परिषद को यह प्रतीत हो कि मामला ऐसा है जिसमें सदस्य का नाम रजिस्टर से पांच साल से अधिक या स्थायी रूप से हटा दिया जाना चाहिए, तो वह खंड (ए) में निर्दिष्ट कोई आदेश नहीं देगी।' या उपवाक्य

(बी) लेकिन मामले को अपनी सिफारिशों के साथ उच्च न्यायालय को अग्रेषित करेगा।

(19) उपरोक्त धारा 9 21 से यह देखा जा सकता है कि दोषी या गैर दोषी का निष्कर्ष देने वाली वास्तविक प्राधिकारी अनुशासनात्मक समिति नहीं है, बल्कि परिषद है जो धारा 21(2) के तहत काम करती है। और 21(3) यह पता लगाता है कि अपराधी अधिकारी दोषी है या नहीं। बेशक,

अनुशासनात्मक समिति इस मामले की रिपोर्ट परिषद को देती है, लेकिन आरोपों पर दोषी या गैर-दोषी का निर्णय देने का अधिकार परिषद को ही है। दूसरी ओर सी.सी.ए. के नियम 14(23) (i) (सी) और (डी) के तहत। नियमों के अनुसार, जांच अधिकारी को आरोप के प्रत्येक लेख के संबंध में साक्ष्य का आकलन करना होता है और फिर आरोप के प्रत्येक लेख पर निष्कर्ष और उसके कारणों को दर्ज करना होता है। सी.ए.ए. के नियम 15 के तहत नियमों के अनुसार, अनुशासनात्मक प्राधिकारी जांच अधिकारी के निष्कर्षों से भिन्न हो सकता है, लेकिन फिर उसे अपने स्वयं के कारण दर्ज करने होंगे और यदि वह जांच अधिकारी की रिपोर्ट से सहमत है, तो किसी भी कारण को दर्ज करना आवश्यक नहीं है। दूसरे शब्दों में, इसका मतलब यह है कि एक तरह से अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा जांच अधिकारी की रिपोर्ट में केवल तभी छेड़छाड़ की जा सकती है, यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए कारणों से भिन्न होने के लिए अपने स्वयं के कारण दर्ज करता है। जहां तक दोषी अधिकारी का सवाल है, जांच अधिकारी की जांच रिपोर्ट एक तरह से अंतिम होती है। हालाँकि, अनुशासनात्मक प्राधिकारी के पास इससे असहमत होने की शक्ति है, लेकिन उसे जांच अधिकारी के निष्कर्षों से असहमत होने के कारणों को रिकॉर्ड करना होगा। यदि जांच अधिकारी द्वारा रिपोर्ट लिखने के बाद और अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा इसे स्वीकार किए जाने से पहले दोषी अधिकारी को एक और अवसर दिया जाना था, तो सी.सी.ए. के नियम 15(4) में संशोधन करने का विचार ही गलत था। नियम अर्थहीन हो जाएंगे और अनुशासनात्मक प्राधिकारी को उन सभी बिंदुओं से निपटने के लिए एक और निर्णय/रिपोर्ट लिखनी होगी जो जांच रिपोर्ट के खिलाफ अपराध अधिकारी द्वारा उठाए जा सकते हैं। इसे प्राकृतिक न्याय के नियमों द्वारा परिकल्पित नहीं कहा जा सकता है, जिनका विधिवत पालन तब किया जाता था जब अपराधी को अवसर दिया जाता था।

जांच प्राधिकारी के समक्ष अधिकारी। हमारा मानना है कि विद्वान एकल न्यायाधीश सी.सी.ए. के प्रावधानों के मद्देनजर रत्ना के मामले (सुप्रा) पर भरोसा करने में सही नहीं थे। नियम।

(20) जहां तक ई. बाशियान के मामले (सुप्रा) का सवाल है, जो कि सुप्रीम कोर्ट की दो जजों की बेंच का फैसला है, यह देखा गया है कि जांच अधिकारी अनुशासनात्मक प्राधिकरण के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है, और, इसलिए, प्राकृतिक न्याय के नियमों की आवश्यकता है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा जांच रिपोर्ट स्वीकार करने से पहले, संबंधित अधिकारी को सुना जाना चाहिए। गौरतलब है कि विशेष रूप से सी.सी.ए. किसी भी मामले में नियमों पर विचार नहीं किया गया बल्कि मामले को बड़ी बेंच के पास भेज दिया गया। इसलिए, और अन्यथा भी विद्वान न्यायाधीशों ने इस पर अंतिम रूप से कोई राय नहीं दी कि यह प्राधिकार प्रतिवादी के विद्वान वकील के लिए कोई सहायता नहीं है।

(21) जहां तक ऊपर उल्लिखित चौथे बिंदु का संबंध है, जिस पर विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष तर्क दिया गया था, यानी कि अपीलीय प्राधिकारी का आदेश एक बोलने वाला आदेश होना चाहिए,

अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने काफी हद तक स्वीकार किया कि वह यह तर्क देने की स्थिति में नहीं होगा कि अपीलीय आदेश (अनुलग्नक पी-6) टिकाऊ है, क्योंकि उनके अनुसार भी यह एक गैर-बोलने वाला आदेश था। हालाँकि, उन्होंने प्रस्तुत किया कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने अपीलीय आदेश को इस आधार पर रद्द करने के लिए कि यह एक गैर-बोलने वाला आदेश था, आर. पी. भट्ट बनाम भारत संघ और अन्य, (8) पर भरोसा किया था। वकील के अनुसार, विद्वान एकल न्यायाधीश को कानून के अनुसार स्पष्ट आदेश पारित करने के लिए मामले को अपीलीय प्राधिकारी को भेज देना चाहिए था, जैसा कि आर. पी. शाफ्ट के मामले (सुप्रा) में किया गया था। हमारी राय है कि चूंकि विद्वान एकल न्यायाधीश ने आदेश अनुलग्नक पी-3 और पी-3/ए को रद्द कर दिया था, इसलिए मामले को अपीलीय प्राधिकरण को भेजने का सवाल ही नहीं उठता। हालाँकि, यदि प्रतिवादी की अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश (अनुलग्नक पी-3 और पी-3/ए) को रद्द नहीं किया गया होता, तो विद्वान एकल न्यायाधीश ने शायद मामले को अपीलीय प्राधिकरण को भेज दिया होता।

(22) ऊपर दिए गए कारणों से, हम पाते हैं कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने प्रतिवादी श्री जे.सी. मेहता की अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश, अनुलग्नक पी-3 और पी-3/ए को रद्द करना कानूनन सही नहीं था। उस हद तक, हम विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले को उलट देते हैं और मानते हैं कि प्रतिवादी श्री जे.सी. मेहता की अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश पूरी तरह से कानूनी हैं।

अस्वीकरण स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह : अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

हरिकिशन
प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी
जिला न्यायालय, गुरुग्राम, हरियाणा